VOL- IX | ISSUE- III | MARCH | 2022 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 7.331 | ISSN 2349-638x

कबीर का यथार्थबोध और उनका मानवीय चिंतन

डॉ. अजीत प्रियदर्शी,
सह-आचार्य, हिन्दी विभाग,
डी०ए०वी० डिग्री कॉलेज, लखनऊ।

शोध सारांश

'यथार्थ' का आशय वास्तविकता से है और 'यथार्थबोध' का सामान्य अर्थ है- 'वास्तविकता का ज्ञान'। 'मानवीय चिंतन' मानव का, मानव सम्बन्धी और मानवोचित चिंतन है, जिसका लक्ष्य मनुष्यता का उत्थान है। संत कबीर का अपने समय और समाज से गहरा रिश्ता रहा। तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक-आर्थिक असमानता, वर्ण, जाति और धर्म के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव तथा वैमनस्यता, अंधविश्वास और बाह्याचारों को असंगत एवं अज्ञान-अहंकार जनित बताकर कबीर ने इन सबका प्रखर विरोध किया। मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करते हुए उन्होंने समानता और एकता की भावना को बल दिया। शास्त्रज्ञान की जगह उन्होंने 'आँखिन देखी' को अहमियत दी। मुल्ला और पंडित के कोरा शास्त्रज्ञान को ठुकराकर उन्होंने 'अनभै साँचा' (अनुभव-सत्य) को निर्भय होकर कहा- 'सांच ही कहत और सांच ही गहत हौं।' समाज के निर्धन वर्ग की दुरावस्था और उपेक्षा से दुखी कबीर ने कहा- 'निर्धन आदर कोई न देई।' दास-प्रथा और सामंती व्यवस्था के जुल्म का उल्लेख कबीर के कई साखियों एवं पदों में मिलता है। सामाजिक या आर्थिक आधार पर छोटे-बड़े के भेद को, आध्यात्मिक दृष्टि से, उन्होंने नकारा और कहा- 'साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।' कबीर ने सच्चा वीर उसे कहा जो निर्धन की पीड़ा जानता है और मरते दम तक उसके साथ खड़ा रहता है- "सूरा सोई सराहिए लरे दीन के हेत।/ पूरजा-पूरजा होई रहे तौ न छाड़े खेत।।"

बीज शब्द *(ज्ञमल ॅवतके)- यथार्थ, यथार्थबोध, मानवीय, चिंतन, मानवीय चिंतन।*

'यथार्थ' का आशय वास्तविकता से है। यथार्थ का सामान्य अर्थ किसी वस्तु को उसके वास्तविक रूप में वर्णित किये जाने से है। 'यथार्थबोध' शब्द-युग्म दो शब्दों 'यथार्थ' और 'बोध' से बना है, जिसका सामान्य अर्थ है - 'वास्तविकता का ज्ञान'। 'बोध' का अभिप्राय ज्ञान, चेतना और बुद्धि से उपलब्ध वास्तविक सत्य से है। जीवन और जगत के प्रत्यक्ष ज्ञान को ही सामान्यतः यथार्थ कहा जाता है। किसी वस्तु, घटना या क्रिया के कार्य-कारण, परिणाम, प्रतिक्रिया, वस्तुस्थिति का सम्यक ज्ञान ही यथार्थबोध कहलाता है। साहित्य में यथार्थबोध से तात्पर्य है - जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति तटस्थ और पक्षपातरहित ईमानदारी से, किसी भी विषय के अच्छे-बुरे दोनों पक्षों को, सम्यक रूप से प्रस्तुत करना।

'चिंतन' मानसिक रूप से विचार करने की ज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जो विभिन्न प्रतीकों के सहारे चलती है और समस्या समाधान में सक्रिय सहयोग देती है। विचारात्मक चिंतन में विचारों और तर्कों को एक क्रम में स्थापित करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं, जो प्रायः व्यावहारिक और सामाजिक होते हैं। 'मानव' शब्द में 'ईय' प्रत्यय जोड़कर 'मानवीय' शब्द बना है। 'मानवीय' (विशेषण) शब्द के अर्थ हैं - मानव संबंधी, मानव का, मानवोचित। 'मानवीय चिंतन' में मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता, सहयोग, प्रत्येक व्यक्ति का मनुष्योचित सम्मान, मानवीय गरिमा, प्रत्येक मनुष्य के जीवन की रक्षा, किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध और हर मनुष्य को सम्मान के साथ जीने का अधिकार जैसे अहम बिन्दुओं पर विचार किया जाता है, जिससे इन लक्ष्यों को प्राप्त करके समाज में इनकी निरन्तरता बनाए रखा जा सके।

शोध का उद्देश्य एवं शोध की पद्धति

इस शोध-आलेख का उद्देश्य कबीरदास के यथार्थबोध और उनके मानवीय चिंतन को तथ्यपरक और तलस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत करना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मैंने कबीर-वाणी के प्रामाणिक संग्रह 'बीजक' का गहन अध्ययन करके कबीर के सामाजिक दृष्टिकोण की परख की है। इस शोध आलेख में कबीर संबंधी उपलब्ध अध्ययन-सामग्री का गहन अध्ययन और विश्लेषण किया गया है। यह आलेख विश्लेषणात्मक शोध पर आधारित है। इस शोध आलेख में आलोचनात्मक पद्धति, विश्लेषणात्मक पद्धति और समाजशास्त्रीय पद्धति का इस्तेमाल करके निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

आमुख

संत कबीर का अपने समय के समाज से गहरा रिश्ता रहा है। उन्होंने प्रेम और भक्ति के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक भेदभाव, आर्थिक शोषण, धार्मिक अंधविश्वासों और कर्मकाण्डों के खोखलेपन का पर्दाफाश किया और समाज में एकता और भाईचारे की भावना को फैलाने का पुरजोर प्रयास किया। तत्कालीन समाज में व्याप्त असमानता, ऊँच-नीच की भावना अथवा एक वर्ग, जाति और धर्म के लोगों का दूसरे वर्ग, जाति और धर्म के लोगों के प्रति भेदभाव तथा वैमनस्यता की भावना को अहंकार तथा अज्ञानताजनित बताकर कवीर ने विरोध का नारा बुलंद किया। मध्यकालीन उत्तर भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता और धार्मिक सहिष्णुता का झंडा बुलन्द करने वाले संतों में कबीर का नाम सबसे पहले आता है। मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करते हुए उन्होंने मनुष्य के आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन में समानतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया। सामाजिक- धार्मिक भेदभाव तथा सामाजिक अन्याय और शोषण के विरूद्ध असहमति तथा विरोध की भावना को कबीर ने अपनी व्यंग्यभरी वाणी द्वारा जन-जन तक पहुँचाया। उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के अंधविश्वासों, पाखण्डों और आडम्बरों पर चोट करके धर्म के सच्चे, सामान्य और मानवीय स्वरूप को उद्घाटित किया। कबीर के धार्मिक सहिष्णुतावादी दृष्टिकोण, मनुष्य मात्र में भाईचारा और समानता की भावना, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन में प्रेम को सर्वोपरि मानने के पीछे उनका अद्वैतवादी, अभेदवादी आध्यात्मिक चिंतन तथा व्यापक मानवीय चिंतन है।

कबीर का यथार्थबोध

कबीर ने भारतीय समाज के दो प्रमुख अंगों, हिन्दू और मुसलमानों को अपने-अपने धर्म के ब्राह्याचारों तथा थोथे कर्मकांडों को लेकर, अज्ञानता तथा अभिमानवश, आपस में लड़ते-झगड़ते देखा। अपने आध्यात्मिक-सामाजिक 'अनुभव-सत्य' ('अनभै साँचा') द्वारा कबीर को यह साफ दिखाई दिया है कि हिन्दू और तुर्क या मुसलमान-दोनों ढोंगी, अज्ञानी और अंधे हैं, इसलिए दोनों ही मनुष्यता ही सच्ची राह या 'सहज' मार्ग या 'मानव धर्म' की राह से भटके हुए हैं - "अरे इन दोहुन राह न पाई।/हिन्दू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देइ।/वेस्या के पाइन-तर सोवै यह देखो हिन्दुआई।/मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।/खाला केरी बेटी ब्याहै घरहिं में करै सगाई।/. . . हिन्दुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।"[१] 'पंडित' और 'मुल्ला' के कुसंस्कारों, ब्राह्याचारों और ढोंग-ढकोसलों पर कबीर करारा व्यंग्य करते हैं : 'ना जाने तेरा साहब कैसा है।/मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहब तेरा बहिरा है?/चिउँटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।/पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।।/अंतर तेरे कपट-कतरनी, सो भी साहब लखता है।'[२]

कबीर अपने अनुभव-सत्य की शक्ति से साफ देख पाते हैं कि पंडित और मुल्ला-मौलवी अपने-अपने संकीर्ण मतवाद और स्वार्थ के कारण संकीर्ण दायरों में बँधे हैं। पंडित, मुल्ला द्वारा बताये गये संकीर्ण मतवाद और साम्प्रदायिक घेरेबंदी से अपने को अलग करते हुए कबीर कहते हैं : "हिन्दू कहो तो हूँ नहीं, मुसलमान भी नाहि।' हिन्दू-मुस्लिम धर्म के ठेकेदारों और वेद, पुराण, कुरान के शब्द-ज्ञान या किताबी बातों की बजाय कबीर ने स्वानुभव द्वारा प्रत्यक्षीकृत राह को ही अपनाया और खुद से कहा- 'अपनी राह तू चल कबीरा।' कबीरदास ने मानव धर्म, मानव समानता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव का एक ऐसा उज्ज्वल एवं प्रशस्त पथ दिखाया जिसको अपनाने से सारे भेदभाव और विषमताएँ स्वयंमेव तिरोहित हो जाती हैं।

कबीर ने आप्तवचन और 'शास्त्र-ज्ञान' की जगह 'अनुभूत ज्ञान', 'कागद की लेखी' की जगह 'आँखिन की देखी' को अहमियत दी। ज्ञान दो प्रकार का माना गया है - पुस्तकीय ज्ञान और आत्म-ज्ञान या स्वसंवेद्य ज्ञान।[३] कबीर का कहना है कि वेद पढ़कर विद्वान कहलाने वाला व्यक्ति भी अज्ञान में पड़ा रहता है, क्योंकि शास्त्रज्ञान से कोई आत्म-स्वरूप का भेद नहीं जान पाता। जब तक आत्मस्वरूप का साक्षात्कार न हो जाए, तब तक अज्ञानता से मुक्ति नहीं मिल सकती : 'पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा, आपु अपनपौ जान न भेदा।। (रमैनी ३५), वेद और पुराण अंधे के हाथ में दर्पण के समान हैं। जिसके पास अन्तःप्रज्ञा या आत्मज्ञान नहीं है, वह अंधे के समान है, जो वेद-पुराण रूपी दर्पण में आत्मस्वरूप और वास्तविक सत्य का साक्षात्कार नहीं कर पाता। जिस प्रकार करछुल पकवान के मधुर रस में पड़ी रहती है लेकिन उसके रस में अनभिज्ञा रहती है, उसी प्रकार शास्त्रज्ञ लोग वास्तविक ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। वेद-शास्त्र का ज्ञान बघारने वाले अज्ञानी लोग उस गधे की तरह हैं, जिसके ऊपर भार लदा है : 'अंध सो दरपन वेद पुराना, दरबी कहां महारस जाना।/जस खर चंदन लादे भारा, परिमल बास न जान गँवारा।/कहहिं कबीर खोजै असमाना, सो न मिला जिहि जाई गुमाना।।'[४] कुरान के ज्ञान का बखान करने वाले काजी को भी वे तत्त्वज्ञान और आत्म-ज्ञान से रहित तथा बाह्याचार में लिप्त देखकर फटकारते हैं : 'काजी कौन कतेब बखाने।/पढ़त-पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहिं जाने।'[५]

'समस्त बाह्याचारों को अस्वीकार करने का साहस' रखने वाले कबीर के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है : "समस्त बाह्याचारों के जंजालों और संस्कारों को विध्वंस करने वाले क्रान्तिकारी थे। समझौता उनका रास्ता नहीं था।"[६] 'पंडित' और 'मुल्ला' के शास्त्रों से पर्याप्त दूरी बनाते हुए कबीर ने निजी अनुभव से अपनी अलग राह बनाई। स्वानुभव से बनाये अपने रास्ते की सच्चाई पर अखंड विश्वास करने वाले कबीर ने घोषणा की - 'पंडित मुल्ला जो लिख दिया, छांड़ि चले हम कछु न लिया।'[७] पोथी या शास्त्र-ज्ञान के निरर्थक भार से लदे 'पंडित' और 'मुल्ला' के शब्द-जाल को, सबको भरमाने वाला, सबके मन-मस्तिष्क को उलझाने वाला बताते हुए, कबीर अपने अनुभव से अर्जित ज्ञान के प्रति दृढ़ आत्म-विश्वास प्रकट करते हुए कहते हैं : मेरा-तेरा मनुआँ कैसे इक होई रे।/मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।/मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ उरझाई रे।[८]

स्व-अनुभूतिजन्य ज्ञान को सर्वोपरि मानने वाले ज्ञानचेता कबीर चाहते थे कि सभी जन भ्रम और अज्ञानता से बचें और ज्ञान के उदय होने के बाद हमेशा आत्मकल्याण के बारे में चिंतन करें - 'कहै कबीर जाग्या ही चाहिये क्या घर क्या बैराग रे।' (श्यामसुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २०६), कबीर ने देखा कि ज्यादातर धर्मोपदेशक स्वार्थवश धर्मकथा के नाम पर रात-दिन झूठी बातें कहते रहते हैं। इसे देखकर उन्होंने कहा कि धर्म की कथा कहने वाले प्रातः उठकर ही झूठी बातें हाँकना शुरू कर देते हैं, क्योंकि उनके हृदय में झूठी बातें ही भरी हुई हैं : धर्मकथा जो कहतहि रहई। लाबरि उठि जो प्रातहि कहई।।/लाबरि बिहाने लाबरि संझा। एक लावरि बसे हृदया मंझा।।/(बीजक, रमैनी ६१)।

कबीर ने धर्मगुरू और पीर-औलिया को अहंकार, अज्ञान, आत्म-प्रदर्शन, अंध-श्रद्धा, पाखंड, धूर्तता आदि में आकंठ डूबा हुआ देखा। उन्हें अनुभव हुआ कि इनसे प्रभावित सामान्य जनता इनकी झूठी बातों पर विश्वास करती है और इनके बारे में सच कहने वाले को मारने दौड़ती है। कबीर जनसामान्य को इनसे सावधान करना चाहते हैं। लेकिन उन्हें पीड़ा होती है कि 'साँच कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।' उन्होंने देखा कि स्वार्थी धर्मगुरूओं की झूठी बातों पर जनता विश्वास कर लेती है और अनुभूत सच्चाई पर कोई विश्वास नहीं करता - 'साँचे कोई न पतीजई झूठे जग पतियाय।/गली-गली गोरस फिरै मदिरा बैठि बिकाय।।'[९]

जीवन में सत्यनिष्ठ कबीर 'सांच ही कहत और सांच ही गहत हौं' की प्रतिज्ञा के साथ निर्भय होकर इस दुनिया की सच्चाई कहते हैं और अनुभव-सत्य ही ग्रहण करते हैं। सच्चे लोगों का साथ ही उन्हें पसंद रहा। वे निर्भय होकर कहते थे कि सच्चा व्यक्ति ही सच्चे के साथ रहे, अगर झूठे लोग आएँ तो उन्हें मारकर दूर हटा देना ही श्रेयस्कर होगा - 'सांचे के संग सांच बसत है, झूठे मारि हटाए।' उन्होंने एक तरफ मुसलमानों के पाखंडों की

पोल खोली तो दूसरी तरफ हिन्दुओं के आडम्बरों की खिल्ली उड़ाई। तथाकथित सत्यवादी काजी के दोहरे चरित्र और धर्म के नाम पर जीव-हिंसा को उजागर करते हुए उन्होंने निर्भय होकर कहा : "यह सब झूठी बंदगी बिरिथा पंच नमाज।/साँचै मारे झूठि पढ़ि काजी करै अकाज।"[१०] हिन्दू धर्मगुरूओं, पंडितों द्वारा पशु-बलि को धर्मसम्मत कहे जाने को लेकर कबीर ने तीखा व्यंग्य किया है और निरूत्तर कर देने वाला सवाल उठाया है : 'जीव बधत अरू धरम कहत हौ, अधरम कहाँ है भाई। आपन तौ मुनिजन ह्वै बैठे, का सनि कहौं कसाई।।'[११] धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा, ज़िबह, हत्या या बलि का प्रसंग आते ही कबीर उग्र हो जाते हैं।

संत कबीर ने समाज में चतुर्दिक देखा कि अधिकांश लोग भौतिक लोभ-लाभ, आजीविका या पेट का धंधा के वशीभूत होकर मनुष्यता और नैतिकता को भुला बैठे हैं। 'पेट का धंधा' में लगे लोगों में अमानवीय स्वार्थपरता को देखकर अत्यन्त खिन्न और उदास होकर वे कहते हैं- "यह जग अंधा मैं केहि समझावों/इक-दुई हों उन्हें समझावों सब ही भुलाना पेट के धंधा।"[१२] मूर्ति पूजा के पीछे छिपे ब्राह्मणों के स्वार्थ और 'पेट का धंधा' को कबीर ने गहराई से लक्ष्य किया और अत्यंत साफ शब्दों में उद्घाटित किया : "लाडू, लावण, लापसी, पूजा चढ़ै अपार।/पूजि पुजारा ले गया, दे मूरति कै मुहिं छार।।"[१३] कबीर ने इस दुनिया के सभी लोगों को अपनी-अपनी आग में जलता हुआ देखा। सबको अपने-अपने वणिज-व्यापार, नफा-नुकसान की आग में जलता देखकर कबीर बेचैन हो उठते हैं। अपनी बेचैनी को, व्याकुल हृदय की बात को निर्भय-निःशंक होकर वे कहना चाहते हैं, मगर कहें तो किससे कहें। जिससे वे अपने हृदय की बात कहते, वही उन्हें डंक मार देता- "ऐसा कोई ना मिलै जासों रहिये लागि।/सब जग जलताँ देखिया अपनी अपनी आगि।।/ऐसा कोई ना मिलै जासों कहूँ निसंक।/जासों हिरदै की कहूँ सो फिरि मारै डंक।।"[१४]

कबीर भी कभी 'लोक' और 'वेद' के भ्रम-जाल में फँसकर, अज्ञानतावश इनके पीछे-पीछे चल रहे थे। लेकिन आगे चलकर सतगुरू (सच्चा गुरू) के द्वारा उन्हें ज्ञान और भगवत्-प्रेम का अनूठा प्रकाश मिला। गुरू से मिला 'ज्ञान' कभी तो तलवार (तरवारि) बनकर उनका भ्रमजाल काट देता है, कभी आँधी बनकर भूल-भ्रांतियों को बहा ले जाता है, और कभी 'प्रेम का बादल' बनकर उनके ज्ञान-शुष्क अन्तर्बाह्य को प्रेम के महारस से सराबोर कर देता है। ज्ञान के प्रकाश द्वारा उन्हें मनुष्य-मनुष्य में समता की अनुभूति और अभेद-दृष्टि प्राप्त होती है। अपने अखंड मानव प्रेम के बल से कबीर ने विभिन्न वर्णों, जातियों-उपजातियों, धर्मों-सम्प्रदायों में विभक्त मानव समुदाय की एकता की स्थापना की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संत कबीर के ऐतिहासिक कार्य के बारे में महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए लिखा है : "इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और शक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।"[१५]

कबीर ने अपने समाज की कड़वी सच्चाइयों, विसंगतियों, गरीबी-अमीरी, धार्मिक-आर्थिक शोषण, जाति और वर्णगत भेदभाव की चुनौतियों का डटकर सामना किया और आध्यात्मिक अभेद-दृष्टि, बौद्धिक तर्क-दृष्टि एवं मनुष्यता की दृष्टि से मनुष्य-मनुष्य की समता एवं एकता पर बल दिया। कबीर ने हिन्दू समाज में मौजूद वर्ण-भेद और जाति-भेद में ऊँच और नीच की भावना का विरोध किया है और कहा है कि सभी प्राणी संसार में समान हैं, सभी प्राणी जैविक रूप से एक हैं, क्या ब्राह्मण, क्या शूद्र। हिन्दू समाज में ऊँच-नीच की भावना पर आधारित वर्ण-व्यवस्था और जाति-प्रथा का कबीर ने स्पष्ट शब्दों में विरोध किया - "एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।/एक जोति थें सब उतपनाँ, कौन बाँम्हण कौन सूदा।"[१६] कबीर अपने समाज में अमीरों-गरीबों के जीवन स्तर में गहरी असमानता और अन्तर्विरोध देखकर बहुत दुखी तथा क्रोधित हो जाते थे। समाज में अमीर और प्रभुत्वशाली लोगों द्वारा निर्धनों का शोषण देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उस समय धनी और निर्धन वर्ग के जीवन स्तर में कितनी असमानता थी, इसे कबीर के इन शब्दों में सुनिए : "कुँभरा एक कमाई माटी, बहु विधि

जुगति बणाई।/एकनि मैं मुकताहल मोती, एकनि ब्याधि लगाई।।/एकनि दोना पाट पटम्बर एकनि सेज निवारा।/एकनि दोना गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा।।"[१७] एक तरफ मुक्ताहल मोती तो दूसरी तरफ व्याधि-अर्थात् दुख, तकलीफ; एक ओर पाट-पटम्बर और पलंग की सेज तो दूसरी ओर गरी-गूदरी और 'सेज पयारा' अर्थात् पुआल का बिछौना। कबीर दोनों वर्गों को आमने-सामने खड़ा करके 'कन्ट्रास्ट' की सृष्टि करते हैं। एक वर्ग मोती धारण करने वाला है, रेशमी वस्त्र धारण करने वाला है, गद्देदार पलंग पर सुख की नींद सोने वाला है, तो दूसरा कष्टों का घर है, फटे-चिटे कपड़े लपेटने वाला है।[१८]

कबीर ने अपने समाज में चतुर्दिक देखा कि निर्धन या निम्न वर्ग के लोगों की स्थिति दयनीय है और यह वर्ग समाज के धनी तथा प्रभुत्वशाली वर्ग द्वारा शोषित, उत्पीड़ित है। दीन-हीन अवस्था में रहने वाले निर्धन वर्ग का कोई सम्मान नहीं करता। कबीर ने निर्धन, निम्न वर्ग की उपेक्षित तथा असहाय अवस्था का वस्तुपरक रेखांकन इन शब्दों में किया है : "निर्धन आदर कोई न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरेई।/जो निर्धन सरधन कै जाई। आगे बैठा पीठ फिराई।/जो सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई।।"[१९] कबीर ने देखा कि निर्धन लोग, दुख, अभाव और रोग से मरते हैं लेकिन धनी लोग और अधिक धन और सुख पाने के फेर में मरते हैं : 'दुखिया मूवा दुख कों, सुखिया सुख कौं झूरि।।'[२०] कबीर ने अपने समाज में मौजूद दास-प्रथा का उल्लेख भी किया है : 'द्वार धनी के पड़ि रहै धक्का धनी का खाय।/कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाँड़ि न जाय।।' या फिर यह देखें- 'दासा तन हिरदे नहीं, नाम धरावे दास।/पानी के पीये बिना कैसे मिटे पियास।।' दास-प्रथा और सामन्ती व्यवस्था के जुल्म के उल्लेख जहाँ-तहाँ कबीर के पदों में मिलते हैं, उपर्युक्त दो पदों में उन्होंने बताया है कि धनी आदमी के द्वार पर पड़े रहने से खाने को धक्का मिलता है। फिर भी अगर द्वार छोड़कर नहीं गये, तो कभी-कभी धनी आदमी खाना भी दे देता है। फिर वे कहते हैं कि दास तो शरीर होता है हृदय नहीं, फिर भी उसे दास ही कहा जाता है। लेकिन कबीर प्रश्न उठाते हैं- पानी पीये बिना प्यास कैसे मिट सकती है। यानी शरीर की जरूरत अथवा यह भी कह सकते हैं कि पेट की जरूरत पूरी किये बिना शरीर का पोषण कैसे हो सकता है। इसी में यह अर्थ भी निकलता है कि दासत्व की अवस्था में शरीर की जरूरत पूरी नहीं हो सकती। कबीर यहाँ जिस दासता का जिक्र करते हैं वह मानसिक नहीं शारीरिक है, यानी वह जाति-प्रथा से ही संबंधित नहीं, आर्थिक विषमता और सामन्ती व्यवस्था से सम्बन्धित दासता भी है। इस दासता से मुक्ति की आवाज निर्गुण संतों ने सबसे अधिक उठाई है, क्योंकि जाति-प्रथा का दंभ उन्हें भी झेलना पड़ता था।[२१] दासों को बुरी तरह मार पड़ते और उन्हें हाट-बाजार में बेचे जाते देखकर कबीर का हृदय पीड़ा से भर उठता था : "मारे बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और।/लागी चोट मरम्म की, रह्यो कबीरा ठौर।।/मूरों कौं का रोइये, जो अपणे घर जाइ।/रोइए बंदीवान को, जो हाटै हाट बिकाई।।"[२२] कबीर ने देखा कि धनी लोग और अधिक धन और सुख-ऐश्वर्य के साधन जुटाने के लिए और गरीब लोग जीविका या पेट भरने का धंधा पाने के लिए प्राण-पण से जुटे रहते हैं, मनुष्यता, आत्मीयता, नैतिकता को प्रायः छोड़कर। धनिक वर्ग के चारित्रिक पतन, सुरापान, वेश्या-गमन आदि के कारण समाज में सज्जन, शीलवान लोगों का आदर-सम्मान बहुत घट गया था। यह सब देखकर, उपजी अपनी पीड़ा को कबीर ने व्यंग्य के लहजे में इस तरह अभिव्यक्त किया : "सतवन्ती को गजी मिलै नहिं, बिस्या पहिरै खासा है।/जेहि घर साधू भीख न पावै, भड़ुवा खात बतासा है।।"[२३]

कबीर ने देखा कि समाज में निम्न वर्ग के लोगों के जीवन में दुखों, कष्टों का कोई अन्त नहीं है। कबीर ने भूख और भूख से पीड़ित निर्धनों की चर्चा कई बार की है- 'भूखा-दूखा क्या करै कहा सुनावै लोग'[२४] और 'खाबै कौं क्या रोइ'[२५] कहकर कबीर ने भूखे व्यक्ति को संबोधित किया है और खाने के लिए लोगों को सुनाने और लोगों के समक्ष रोने से मना किया है। क्योंकि कबीर को मनुष्यहीन, करूणा-विहीन धनिक वर्ग से मदद की कोई आशा नहीं थी। भूख से बेहाल लोगों द्वारा अपनी संतानों तक को बेचने के लिए मजबूर होने की भयावह, त्रासद और कारूणिक जीवन-दशा का चित्रण करते हुए संत कबीर का हृदय चित्कार उठा है : 'को है लरिका बेचई लरिकी बेचई कोइ।'[२६] प्रजा के दीन-हीन दशा के लिए जिम्मेदार और धन-संग्रह के लिए हमेशा हाय-हाय करने

वाले राजा के नष्ट होने की भविष्यवाणी कबीर ने की है : 'धन संचते राजा मूये, अरू ले कंचन भारी।'[२७]

शोषणकारी सामंती व्यवस्था और भ्रष्ट सत्ता के राजकर्मचारी वर्ग के दुष्चक्र में फँसे किसानों की दयनीय दशा कबीर से छिपी नहीं थी। आध्यात्मिक प्रतीक के सहारे ही सही, लेकिन कबीर ने अपने समय में किसान की दयनीय दशा और लाचारी का यथार्थ वर्णन किया है : 'अब न बसूँ इहि गाऊँ गुसाई।/तेरे नेवगी खरे सयाँने हो राम।/. . . गाउँ कु ठाकुर खेत कु नेपैं, काइथ खरच न पारै।/जोरि जेवरी खेत पसारै, सब मिलि मोकों मारें हो राम।/खोटो महतौ बिकट बलाही, सिर कसदम का पारै।/बुरौ दीवाँन दादि नहिं लागै, इक बाँधे इक मारै हो राम।।'[२८] यहाँ राजकर्मचारी के चतुर और धूर्त होने, जमींदार द्वारा बेइमानीपूर्वक खेत की नाप अधिक बताये जाने, ठाकुर या जमींदार के पक्ष में खड़े पटवारी द्वारा खेत का हिसाब गलत लिखे जाने का उल्लेख किया गया है। भ्रष्ट पटवारी के पास इतना धन होता था कि, 'काइथ खरच न पारे'। लगान वसूलने वाले राजकर्मचारी जोर-जबरदस्ती अधिक लगान वसूलते। राज्य के उच्च अधिकारी (दीवान) से शिकायत करने पर भी उसे दर्द नहीं उपजता, उल्टा वे दोनों मिलकर उसे मारते हैं - 'एक बाँधे एक मारै हो राम।' आध्यात्मिक प्रतीकों के समानान्तर, किसानों के शोषणकारी 'तंत्र' का यह समाजशास्त्रीय विश्लेषण यथार्थ के अधिक नजदीक दिखाई पड़ता है।

संत कबीर का मानवीय चिंतन

कबीर ने सभी मनुष्यों को एक ही ईश्वर की संतान बताकर मानव-मात्र में तात्विक अभेद की घोषणा की - 'अव्वलि अल्लह नूर उपाया कुदरति के सब बंदे।/एक नूर तैं सब जग कीया कौन भले कौन मंदे।।'[२९] जाति, वर्ण, धर्म-सम्प्रदाय के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव का खंडन करके कबीर ने, आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से, मानव-मानव में समता और एकता की प्रतिष्ठा की। इस तरह कबीर का समाज दर्शन मानव-मात्र में सामाजिक समानता और एकता की भावना पर आधारित है। उन्होंने अपने सच्चे ज्ञानमार्ग, प्रेम और भक्ति के मार्ग को सभी के लिए खोल दिया।

कबीर ने आध्यात्मिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से मानव-मानव के साम्य-भाव पर जोर दिया। जीवन में वे सुख-दुख, मानापमान, निन्दा-स्तुति को 'सम' कर देना चाहते थे। वर्ण-जाति और वर्ग भेद के उबड़-खाबड़ टीले को समतल करने को 'लक्ष्य' बनाने वाले कबीर ने परमात्मा को भी 'समदृष्टि' वाला बताया - 'लोहा कंचन सम जानहिं ते मूरत भगवाना' और 'सर्व भूत एके कहि जाना चूके वाद विवाद'। कबीर की दृष्टि में, बड़े-छोटे, अमीर-गरीब सभी परमात्मा की संतान हैं, इसलिए उनमें समानता और भाईचारा होनी चाहिए - 'साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।' कबीर मानव-मानव में किसी भी दृष्टि से ऊँच-नीच का भाव मिटाकर समानता या साम्यता का भाव जगाना चाहते थे- 'ऊँच नीच सम सरिया, ताथे जन कबीर निसतरिया।।'[३०]

कबीर ने धार्मिक सहिष्णुता और हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे की भावना पर पर्याप्त बल दिया। आपस में लड़ने वाले हिन्दू-मुस्लिमों को समझाते हुए उन्होंने 'अल्लह-राम-करीमा-केसो' को एक ही बताया- "(भाई रे) दुई जगदीश कहाँ ते आया, बहु कवने भरमाया।/अल्लह-राम-करीमा केसो, (ही) हजरत नाम धराया।।/ गहना एक कनक तें गढ़ना, इनि महँ भाव न दूजा।/कहन-सुनन को दुर करि पापिन, इक निमाज इक पूजा।।"[३१] 'न हिन्दू न मुसलमान' कहकर खुद का परिचय देने वाले कबीर का धर्म मनुष्यता का धर्म है और उनका जीवन-दर्शन मानवतावादी है। उनका 'सहज' वस्तुतः मानव-धर्म ही है, जिसमें मानव-मात्र की समता और एकता का आत्मीय, प्रेममय उद्घोष है। गरीबों के दुख से अहर्निश जागने और रोने वाले कबीर गरीबों के साथ बहुत हिले-मिले थे। उन्होंने कहा भी है : 'दीन गरीबी बंदगी साधन सों आधीन।/ताके संग मैं यो रहूँ ज्यों पानी संग मीन।।'[३२] वे जानते थे कि उदात्त मानवीय मूल्य गरीबों के पास ही होते हैं। उनके 'अल्लह-राम-करीमा-केसो' 'गरीबनेवाज़' के रूप में ही उनके हृदय में बसे हुए थे- 'कबीर का स्वामी गरीबनिवाज'।

कबीर के लिए 'वीर' की पहचान है, जो दूसरों की पीड़ा जानता है- 'कबीरा सोई वीर है, जो जाणे पर पीर।' कबीर उसी शूर-वीर की सराहना करना चाहते हैं, जो दीन-हीन के लिए लड़ मरे- 'सूरा सोई सराहिए लरे

दीन के हेत।/ पूरजा-पूरजा होई रहे तौ न छाड़े खेत।।' दीन-हीन, पीड़ित-दलित जनों के प्रति दया, प्रेम और अपनापन का व्यवहार करने की सलाह देते हुए वे कहते हैं- 'तिनका कबहूँ न निंदिए जो पाँयन तर होय।/कबहूँ उड़ि आँखिन परै पीर घनेरी होय।।[३३] वे निर्धन और धनी को भाई-भाई बताते हैं, क्योंकि वे दोनों ही प्रभु की लीला या कला के करामात हैं- 'निरधन सरधन दोनों भाई।/प्रभु की कला न मेटी जाई।।'[३४] कबीर की दृष्टि में धन का असली 'मूल्य' उसकी सामाजिक उपयोगिता है। इसीलिए धनिक वर्ग को कबीर सलाह देते हैं- "जो जल बाढ़ै नाव में घर में बाढ़े दाम।/दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।"[३५]

कबीर एक मानवतावादी संत हैं, जिन्होंने उदात्त मानवीय प्रेम, करूणा, ज्ञान, परहित भावना से परिपूर्ण निश्छल-निर्मल मानव का आदर्श दुनिया के सामने रखा। "कबीर ऐसा समाज चाहते हैं, जिसमें जात-पाँत नहीं हो, आर्थिक समानता हो, मनुष्य का चरित्र और व्यक्तित्व कथनी-करनी के भेद एवं पाखंड से मुक्त हो। समाज में धर्म हो, लेकिन ऐसा जिसमें आडम्बर नहीं हो, जो आत्मा को शुद्ध रखे और उसमें ईश्वर की भूमिका शोषण, ठगी, अत्याचार करने वाले को दण्ड देने वाली हो।"[३६] 'आत्मनियंत्रण' और 'आत्मसंयम' कबीर के मानवीय चिंतन के सार तत्त्व हैं, जिसे कबीर ने खुद से भी कहा और उन सबसे भी कहा, जो दुनिया को बेहतर तथा मनुष्योचित बनाना चाहते हैं - 'उदर समाता अन्न लै तनहि समाता चीर।/अधिकहिं संग्रह ना करै ताको नाम कबीर।।'[३६]

सन्दर्भ :

१. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, १९९०, कबीर, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ २७१, पद-२४७
२. वही, पृष्ठ १३२
३. सिंह, वासुदेव, १९९३, कबीर-साखी-सुधा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ ५३
४. वही।
५. मिश्र, शिवकुमार, १९९६, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ ४९
६. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, वही, पृष्ठ १४७
७. श्यामसुन्दरदास, संवत् २०३६, कबीर ग्रंथावली, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ २६२
८. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, वही, पृष्ठ २४७
९. वागर्थ, अंक ५९, मार्च-अप्रैल २०००, कबीर विशेषांक, पृष्ठ ६६
१०. श्यामसुंदरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ४२
११. वही, पृष्ठ ७९
१२. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, वही, पृष्ठ २७३
१३. श्यामसुन्दरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ११६
१४. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, वही, पृष्ठ ११३
१५. शुक्ल, रामचन्द्र, संवत् २०४९ विक्रमी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ ३६
१६. श्यामसुन्दरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ८२
१७. वही, पृष्ठ ९३
१८. सिंह, कृष्णकुमार, २०००, संत काव्य के विकास में वर्ण, जाति और वर्ग की भूमिका, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ १२१
१९. श्यामसुन्दरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ २३०
२०. सिंह, जयदेव, सिंह, वासुदेव (सम्पा.), १९७६, साखी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ २२६
२१. ठाकुर, खगेन्द्र, वागर्थ, अंक ५९, मार्च-अप्रैल २०००, कबीर का समाज (आलेख), पृष्ठ ६०-६१
२२. चतुर्वेदी, परशुराम, २००९, संत काव्य, किताब महल, पृष्ठ ११०
२३. श्यामसुंदरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ६६
२४. सिंह, जयदेव, सिंह, वासुदेव (सम्पा.), १९८१, साखी, पृष्ठ ३८
२५. वही।
२६. वर्मा, रामकुमार, १९६६, साहित्य भवन प्रा०लि०, इलाहाबाद, पृष्ठ ४३
२७. श्यामसुंदरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १४६
२८. सिंह, जयदेव, सिंह, वासुदेव (सं.पा.), १९८१, साखी, वही, पृष्ठ ११

२९. तिवारी, पारसनाथ, १९६१, कबीर ग्रंथावली, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पद १८५, पृष्ठ १०८
३०. श्यामसुंदरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ११३
३१. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, वही, कबीर, पृष्ठ २७१
३२. वागर्थ, अंक ५९, मार्च-अप्रैल २०००, पृष्ठ ६४
३३. वही।
३४. श्यामसुंदरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, परिशिष्ट, पृष्ठ ३०२
३५. वही, पृष्ठ २५
३६. ठाकुर, खगेन्द्र, वागर्थ, वही, कबीर का समाज (आलेख), पृष्ठ ६५
३७. श्यामसुंदरदास, वही, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ २६

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com